भद्रकीर्ति (बप्पभट्टि) सूरि की स्तुतियों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

मृगेन्द्रनाथ झा

हृदय के अंदर अंकुरित भाव को भाषा के रूप में प्रकट करना 'काव्य' कहलाता है; अर्थात् भाषा भावों की वाहिका है। चित्त जब कहीं तल्लीन हो जाता है तब हृदय में भावनाएँ उठती हैं तथा उन भावनाओं को इष्टदेव या देवी के समक्ष प्रस्तुत करने वाली वाचा 'स्तुति' है। जिस प्रकार प्राणी अपने सांसारिक सुख-दुःख को माता-पिता को कहकर कष्ट से मुक्ति पाने का प्रयास करता है, ठीक उसी तरह भक्त इष्टदेव के समक्ष स्तुति के सहारे अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है।

स्तोत्र की परम्परा वेद से लेकर महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवत तथा बाद के कवियों—सिद्धसेन, मानतुङ्गाचार्य, मयूर, पुष्पदन्त आदि में रही तथा आज भी है।

ऐसे ही स्तुतिकारों में सिद्धहस्त कवि, किन्तु श्वेताम्बर जैन संप्रदाय के बाहर अप्रसिद्ध, श्री भद्रकीर्ति अपरनाम बप्पभट्टिसूरि का नाम आता है। इनके समयादि के सम्बन्ध में प्रा॰ मधुसूदन ढांकी द्वारा (८वीं शती) जो निर्णय लिया गया है, मैं उससे पूर्ण सहमत हूँ[१]।

यहाँ हमने कवि बप्पभट्टिसूरि की कुछ स्तुत्यात्मक काव्यकृतियों की सानुवाद समीक्षा की है। इन स्तोत्रों में **श्रीसरस्वतीकल्प**[२], **सिद्धसारस्वतस्तवः**[३], **साधारणजिनस्तव**[४], **श्रीनेमिजिनस्तुतिः**[५] एवं **प्रबन्ध-चतुष्टय** के अंतर्गत दिया गया **'जिनस्तोत्र'**[६] हैं। उसमें **श्रीसरस्वतीकल्प** एवं **सिद्धसारस्वतस्तव** में कहीं कहीं पाठान्तर हैं, जिसका यथास्थान निर्देश सहित समावेश किया गया है। (**सरस्वतीकल्प** के मुद्रित इन दोनों पाठों की अशुद्धियों को एल॰ डी॰ इन्स्टिट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, अहमदाबाद की हस्तलिखित प्रति से सुधारकर मैंने यहाँ दर्शाया है।) (बप्पभट्टिसूरि की सबसे बड़ी कृति **'स्तुति-चतुर्विंशतिका'** का भलीभाँति, सानुवाद एवं समालोचना समेत सम्पादन प्रा॰ हीरालाल रसिकदास कापड़िया कर चुके हैं*, इसलिये उस रचना पर यहाँ गौर नहीं किया गया है।)

आचार्य मम्मट (ईस्वी॰ १०वीं-११वीं शती)ने अपने **काव्यप्रकाश** में काव्य का प्रयोजन 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे[७]॥' कहा है। यहाँ शिवेतर का क्षय भी काव्य का प्रयोजन बताया गया है। उदाहरणस्वरूप मयूर, जयदेव, पण्डितराज जगन्नाथ आदि कवियों का नाम दिया जा सकता है, जिनको स्तोत्रपाठ से अमङ्गलनाश का फल मिला था, ऐसी अनुश्रुति है।

जैसे शरीर में हार-कुण्डल आदि संयोग-सम्बन्ध से तथा शौर्यादि गुण आत्मा के संग समवाय-सम्बन्ध से उपस्थित रहते हैं, उसी तरह काव्य में अनुप्रास और उपमादि अलङ्कार संयोग-सम्बन्ध से तथा आत्मभूत रस में माधुर्यादि गुण समवाय-सम्बन्ध से रहते हैं।

यहाँ हमने उपर्युक्त कृतियों के अंतरंग में निहित रस, गुण तथा अलङ्कारों के बारे में यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

जब सहृदयों के हृदय में उत्कट भक्ति या परम प्रीति रूप सात्त्विक भाव का उद्रेक होता है तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्फुरण होता है और यही स्फुरण भाषा को जन्म देता है । स्तोत्र काव्य का स्थायी भाव देव-गुरु या अन्य वन्द्यविषयक रति है ।

पहले हम रस की चर्चा करेंगे । आचार्य मम्मट ने विभाव-अनुभाव और सञ्चारिभाव से अभिव्यक्त स्थायी भाव रस है, ऐसा कहा है[९] । आचार्य विश्वनाथ (१३वीं १४वीं शती)ने भी इसी बात को दुहराया है[१०]। यहाँ प्रस्तुत स्तोत्रों में शान्तरस है । यद्यपि कुछ विद्वान् राग-द्वेष आदि का निर्मूलन अशक्य मानते हुए शान्तरस का खण्डन करते हैं तो कुछ लोग वीर-बीभत्सादि में ही इसका अन्तर्भाव मानते हैं[१०] । मैंने शान्तरस की सत्ता स्वीकार करते हुए इन स्तोत्रों में शान्तरस के लक्षणों को घटाने का प्रयास किया है ।

यथा-क्षुभ्यत्क्षीर समुद्र-**सरस्वती**.....दुग्धाम्बुधेः ॥४॥

इस पद्य में सरस्वती का स्वरूपचिन्तन आदि इसके आलम्बन, एकान्तता-उद्दीपन, रोमाञ्चादि अनुभाव तथा हर्षादि व्यभिचारी से शान्तरस का अनुभव होता है ।

कहीं-कहीं तो भावध्वनि भी देखने को मिलती है जैसे 'नमस्तुभ्यं मनोमल्ल'[११] यहाँ जिनेश्वर-नमस्कार तथा व्यभिचारि भावों की प्रतीति व्यञ्जना से होती है ।

तथा - 'धन्यास्ते'[१२] इस स्तुति में आगम का ज्ञान तथा स्फार दृष्टि से परिणत बुद्धि का ज्ञान भी व्यञ्जना से होता है, अतः भावध्वनि है ।

वाणी की विभूषारूप अलङ्कार दो तरह के होते हैं : शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार । जहाँ दोनों की उपस्थिति एक ही स्थान में हो वहाँ उभयालङ्कार माना जाता है । भद्रकीर्तिसूरि के स्तोत्र में उपर्युक्त तीनों की उपस्थिति है । विशिष्ट कवि कभी अलङ्कारों को ध्यान में रखकर रचना नहीं करते बल्कि उनकी वाणी ही अनायास अलङ्कृत होती है । जब कोई प्रतिभाशाली कवि अपने आराध्य की अलौकिक महिमा का गुणानुवाद करता है तो उनकी विवक्षा में जो बहिः प्रकाश रूप भक्ति होती है वही वेग के कारण विविध रूपों में अभिव्यक्त होकर अलङ्कारों के स्वरूप को प्राप्त करती है । पात्र के भर जाने पर दिया जाने वाला पानी जिस प्रकार अपने आप इधर-उधर बह जाता है उसी प्रकार काव्य से अलङ्कार भी चारों तरफ बह जाता है ।

श्री बप्पभट्टिसूरि भी अपने आराध्य की भक्ति में इतने लीन थे कि उनके मुख से निकली हुई वाणी उनके गुणगान होने के कारण परम आस्वाद्य हो गयी । इनकी कृतियों में भी उसी प्रकार अलङ्कार चतुर्दिक प्रकाश बिखेरता है । यहाँ दोनों या तीनों तरह के अलङ्कार मिलते हैं ।

'दुर्गा-पवर्ग-सन्मार्ग-स्वर्ग-संसर्ग'[१३] - में रकार एवं गकार की आवृत्ति बार-बार हुई है । अतः स्फुटानुप्रास है । साथ ही 'तारिणे-कारिणे' में पदान्त यमक है ।

शारदास्तोत्र के प्रथम श्लोक में 'सारिणी-धारिणी' एवं द्वितीय में 'दानव-मानव' में नकार वकार की आवृत्ति, चौथे में 'समाननाम्-माननाम्' तथा 'सरस्वतीम्' में यमक पुनः पाँचवें श्लोक में 'लाञ्छिते-वाञ्छिते,' 'लोचने-मोचने,' ११वें में 'कविता-वितानसविता' '**साधारणजिनस्तवनम्**' के तीसरे पद्य में 'पराङ्मुखाः ।' **नेमिजिनस्तुति** के भी प्रथम श्लोक में 'सजल जलधर,' 'पायाद-पाया,' दूसरे पद्य में 'मदमदन' एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सूदितारः- भासितारः,' 'यातारः, स्रष्टारः, वेदितारः' तीसरे में 'शुचिपदपदवी;' 'माधुर्यधुर्याम्,' 'पायं पायं-व्यपायं,' आदि स्थलों के अवलोकन से स्पष्टतया कह सकते हैं कि भद्रकीर्तिसूरि के काव्य में शब्दानुप्रास की भरमार है ।

अब अर्थालङ्कार के बारे में विचार करें । पहले रूपक अलङ्कार को देखें । जैसे **सरस्वतीकल्प** के दूसरे पद्य में 'वक्त्रमृगाङ्क,' 'त्वद्वक्त्ररङ्गागणे,' पाँचवे पद्य में 'हृत्पुण्डरीके,' 'पीयूषद्रववर्षिणि,' छठे में 'गौरीसुधातरङ्गधवला,' 'हृत्पङ्कजे,' 'चातुर्यचिन्तामणिः' इत्यादि स्थलों में रूपकालङ्कार स्फुट है । इसी प्रकार **शारदास्तोत्र** के पहले पद्य में 'प्रणतभूमिरुहामृत,' दूसरे में 'नयनाम्बुजम्,' तीसरे में 'गणधरानन मण्डप,' 'गुरुमुखाम्बुज,' आदि स्थानों पर रूपकालङ्कार स्फुट है । इसके अलावा उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, उपमा आदि अलङ्कारों के लक्षण का निर्वाह होता है । यथा ''बप्पभट्टि कथानक'' अंतर्गता 'मथुरा जिनस्तुति' के दूसरे श्लोक में दृष्टान्तालङ्कार है । यहाँ उपमान और उपमेय वाक्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार होता है । यहीं तीसरे में 'भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा'[१४] अर्थान्तरन्यास का लक्षण घटित होता हैं । यहीं नौवें श्लोक में 'विनोक्तिश्चेद्विना किञ्चित्प्रस्तुतं हीनमुच्यते'[१५] लक्षण का निर्वाह होने से विनोक्ति अलङ्कार है । **साधारण जिनस्तवन** के प्रथम पद्य में 'विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे'[१६] इस लक्षण का पूर्ण रूप से निर्वाह होने पर 'विशेषोक्ति' है तथा 'विभावना विनापि स्यात्कारणं कार्यजन्म चेत्'[१७] इस लक्षण के घटने से 'विभावना' अलंकार है क्योंकि द्वेषरूप कार्य का शत्रुता रूप कारण होता है जिसका यहाँ अभाव है । यहाँ दया-प्रेम रूप कारण से द्वेषरूप कार्य दिखाया गया है अतः विभावना-विशेषोक्ति का संकर है।

अब काव्य की गुणोपस्थिति को देखें । यद्यपि गुणों की संख्या आचार्यों ने अलग-अलग मानी है, भरतमुनि ने **नाट्यशास्त्र** (ईस्वी दूसरी-तीसरी शताब्दी) में दश, **सरस्वतीकण्ठाभरण** (११वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) में भोज ने २४ गुणों का उल्लेख किया है किन्तु **काव्यप्रकाश** (ईस्वी ११वीं-१२वीं शताब्दी) आदि ग्रन्थों में माधुर्य, ओज, और प्रासाद, इन तीन को ही माना गया है । यहाँ तीन गुणों की उपस्थिति पर विचार करेंगे । क्योंकि भोज आदि आचार्यों को अभिमत सभी गुणों का इन तीन गुणों में ही समावेश होता है ।

साधारणजिनस्तवन के प्रथम स्तुति में माधुर्य गुण के सभी लक्षण मिलते हैं अर्थात् यहाँ प्रथम और पञ्चम वर्ण का संयोग ट-ठ-ड-ढ की अनुपस्थिति तथा लघु रकार हैं । ये सभी लक्षण माधुर्य गुण के पोषक हैं । इसी प्रकार **नेमिजिनस्तुति** के प्रथम श्लोक तथा **शारदास्तोत्र** के अनेक स्थानों में माधुर्य गुण का लक्षण घटित होता है । मुख्यतः शृङ्गार और शान्तरस का पोषक यह गुण है तथा प्रस्तुत स्तुतिमाला शान्तरस प्रधान है अतः इनकी उपस्थिति यहाँ स्वाभाविक है ।

इनकी काव्यकला पर विचार करें तो काव्यलक्षण के प्रसङ्ग में आचार्य मम्मट ने 'दोषहीन-गुणयुक्त तथा अलङ्कृत शब्द और अर्थ को काव्य कहा[१८] है ।' अलङ्कार के मामले में इन्होंने थोड़ी छूट दी है कि अगर कहीं अलङ्कार स्फुट नहीं हो फिर भी उसकी काव्यत्व में कोई हानि नहीं होती है । प्रस्तुत काव्य भी उपर्युक्त तीनों गुणों से पूर्ण, साथ ही शान्तरस से ओतप्रोत है ।

पण्डितराज जगन्नाथ ने भी लोकोत्तर आह्लाद का अनुभव करानेवाला वाक्य, काव्य कहलाने का अधिकारी है, ऐसा कहा है । उन्होंने आचार्य मम्मट के शब्द और अर्थ दोनों में काव्यत्व मानने का तर्कपूर्ण खण्डन किया है । वस्तुतः लोकोत्तर आह्लादजनक वाक्य काव्य है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ श्री सूरिजी के **सरस्वतीकल्प** के पाठ मात्र से पाठक स्वतः ही माँ शारदा की छवि के प्रति भावुक हो जाते हैं जिस तरह के छवि के वर्णन में कवि ने अपनी प्रौढ़ता दर्शायी है अतः पण्डितराज का 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'[१९] इस काव्य परिभाषा का भी अक्षरशः निर्वाह होता है । अतः काव्यत्व में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ।

भद्रकीर्ति योग के भी मर्मज्ञ थे ऐसा आभास उनके **सरस्वतीकल्प** से स्पष्ट होता है । यह काव्य प्राञ्जलता, गेयता, मंजुलता, तथा छन्द के नियमों का अक्षरशः निर्वाह करनेवाला एवं भावपूर्ण है । प्रसंगोचित शब्दों का प्रयोग इसकी विशेषता है, जो कम कवियों में पाया जाता है । इन्होंने **सिद्धसरस्वतीकल्प** एवं **शारदास्तोत्र** में मन्त्र एवं उनके उपयोग की विधि बतायी है जो उनको मान्त्रिक होना सिद्ध करती है । (वे चैत्यवासी आम्नाय के मुनि थे ।)

('**श्रीसरस्वतीकल्प**' ला० द० भे० सू० २४६७५ के आधार पर मैंने प्रस्तुत किया है उसमें कहीं कहीं पाठान्तर हैं जिसको मैंने पादटिप्पणी में दिखाया है । यहाँ **सिद्धसरस्वतीसिंधु,** संग्राहक आचार्य श्री चन्द्रोदयसूरि तथा प्रकाशक श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जैन मन्दिर रांदेर रोड, श्वे० मूर्ति० तपागच्छ जैन श्री संघ, अडाजण पाटीया, सूरत से १९९४ ई० में प्रकाशित **सरस्वतीकल्प** के पाठान्तर को पा० १ तथा साराभाई मणिलाल नवाब द्वारा १९९६ ई० में प्रकाशित **श्री भैरवपद्मावती कल्प** के '**श्रीसरस्वतीकल्प**' के पाठान्तर को पा० २ से दिखाया गया है । उसी प्रकार '**सिद्धसारस्वतस्तव**' का पाठान्तर उपर्युक्त '**सिद्धसरस्वतीसिंधु**' के आधार पर लिया गया है । शेष दो की अन्य प्रति नहीं मिलने के कारण उद्धृत पाठ को ही प्रमाण मानकर मैंने उनकी समीक्षा की है । उपलब्ध मूल श्लोकों को आर्ष प्रयोग मानकर विना कोई परिवर्तन किये ज्यों का त्यों उद्धृत किया गया है । इस में मिली श्री अमृतभाई पटेल की सराहनीय सहायता के लिए आभारी हूँ ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसरस्वतीकल्पः

(शार्दूलविक्रीड़ितम्)

कन्दात् कुण्डलिनि[1] ! त्वदीयवपुषो निर्गत्य तन्तुत्विषा
किञ्चिच्चुम्बितमम्बुजं शतदलं त्वद्ब्रह्मरन्ध्रादयः ।
यश्चन्द्रद्युति चिन्तयत्यविरतं भूयोऽस्य भूमण्डले
तन्मन्ये कवि चक्रवर्ति पदवी छत्रच्छलाद् वल्गति ॥१॥

हे कुण्डलिनी ! तुम्हारे शरीर के मूल से दीप्ति की किरण निकलकर ब्रह्मरन्ध्र के शतदलकमल का स्पर्श करती है, जिससे वह चक्रवर्ती के छत्र के समान लगती है; जो कोई इस द्युति का ध्यान करता है वह इस भूमण्डल पर चक्रवर्ती कवि के समान शोभित होता है ।

यस्त्वद्वक्त्र मृगाङ्कमण्डलमिलत्कान्तिप्रतानोच्छल-
च्चञ्चच्चन्द्रक चक्रचित्रितककुप्कन्याकुलं ध्यायति ।
वाणि[2] ! वाणिविलासभङ्गुरपदप्रागल्भ्यशृङ्गारिणी
नृत्यत्युन्मदनर्तकीव सरसं तद्वक्त्ररङ्गाङ्गणे ॥२॥

हे सरस्वती ! आपके मुखरूप चन्द्रमण्डल से निकलते हुए प्रकाश के चन्द्रक चक्र से सभी दिशाएँ कान्तियुक्त होती है, ऐसे कान्तियुक्त मुखमण्डल का जो कोई ध्यान करता है उसके मुखरूपी रंगमण्डप में सरस वाणी उन्मत्त नर्तकी के तरह नृत्य करती है, अर्थात् आभायुक्त चन्द्र समान सरस्वती के मुख का जो ध्यान करता है वह उनकी कृपा से कुटिला वाणी को भी सरस करने में समर्थ हो जाता हैं ॥२॥

देवि ! त्वद्धृत चन्द्रकान्त करकश्च्योत[3]त्सुधा निर्झर-
स्नानानन्द तरङ्गितः[4] पिबति यः पीयूषधाराधरम् ।
तासलङ्कृत चन्द्रशक्तिकुहरेणाकण्ठ मुत्कण्ठितो-
वक्त्रेणोद्धिरतीव तं पुनरसौ वाणी विलासच्छलात् ॥३॥

हे देवी ! जो कोई आपके हाथ में अनवरत अमृत बरसानेवाला, चन्द्रकान्त से झरते हुए अमि को पुलकित होकर कण्ठ तक पान करता हैं उसके मुँह से निकले शब्द कण्ठ छिद्र होकर वाणी विलास के बहाने दशों दिशाएँ हृदयङ्गम होते हैं (अर्थात् पुलकित मन से आपके मन्त्र का जाप करता हैं वह अगाध पण्डित होता है ।) ॥३॥

क्षुभ्यत्क्षीर समुद्र निर्गत महाशेषाहिलोलत्फणा
पत्रोन्निद्र सितारविन्द कुहरेचन्द्र[5] स्फुरत्कर्णिके[6] ।
देवि ! त्वाञ्च निजञ्च पश्यति वपुर्यः कान्तिभिन्नान्तरं
ब्राह्मि ब्रह्मपदस्य वल्गति वचः प्रागल्भ दुग्धाम्बुधेः ॥४॥

हे देवी ! शेषनाग के फन से चलायमान क्षीर समुद्र के श्वेत कमल पर विराजमान आपके स्वरूप को जो क्षीरसमुद्र से भी अधिक कान्ति युक्त देखता है, उनके कान में आप शास्त्र कहती हैं ।

---

(१) पा॰ १-२ नी, (२) पा॰ १ वाणी, (३) श्चयो, (४) पा॰ १-२ तं, (५) पा॰ १-२ कुहरैश्चन्द्र, (६) पा॰ १-२ कर्णिकैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाभि पाण्डुर पुण्डरीक कुहराद् हृत्पुण्डरीके गलत्-
पीयूष द्रव वर्षिणि ! प्रविशतीं त्वां मातृकामालिनीम् ।
दृष्ट्वा भारति ! भारती प्रभवति प्रायेण पुंसो यथा
निर्ग्रन्थीनि शतान्यपि ग्रथयति ग्रन्थायुतानां नरः ॥५॥

अमृत की वर्षा करने वाली भारती ! स्वर्ण कलश के विवर से हृदयकमल पर अमृत की वर्षा करती हुई मातृकामालिनी (अक्षरों का एक यन्त्र विशेष) की ओर जाती हुई, आपके रूप का ध्यान करनेवाले का आगम-ज्ञान विरल मनीषी के समान प्रखर होता है ॥५॥

त्वां मुक्तामय सर्वभूषणधरां[७] शुक्लाम्बराडम्बराम्
गौरीं गौरीसुधातरङ्गधवला मालोक्य हृत्पङ्कजे ।
वीणापुस्तक मौक्तिकाक्षवलय श्वेताब्जवल्गत्कराम्
न स्यात् कः शुचि[८] वृत्तचक्ररचना चातुर्य चिन्तामणिः ॥६॥

अमृत के तरङ्गों से भी अधिक चमत्कृत, श्वेत रूप वाली, श्वेतवस्त्र से विभूषित, वीणा-पुस्तक तथा मोती की माला से सुशोभित हाथ तथा मुक्तामय सभी आभूषणों से सुसज्जित होकर श्वेत कमल पर स्थित ऐसे आपके रूप को हृदय कमल में देखकर भला किस के हृदय में काव्य का स्फुरण नहीं होता या चातुर्यरूपी चिन्तामणि की प्राप्ति नहीं होती ? ॥६॥

पश्येत् स्वां तनुमिन्दु मण्डलगतां त्वां चाभितो मण्डिताम्
यो ब्रह्माण्ड करण्ड पिण्डित सुधा डिण्डीरपिण्डैरिव ।
स्वच्छन्दोद्गत गद्य-पद्यलहरी लीलाविलासामृतैः-
सानन्दास्तमुपाचरन्ति कवयश्चन्द्रं चकोरा इव ॥७॥

चन्द्रमण्डल में जाते हुए आप अपने शरीर को देखें आपके चारों ओर इन्दु की आभा ऐसी मण्डित की है मानो अमृत सिन्धु के फेन ब्रह्माण्ड हृदय को घेर रखा हो ! कवि लोग अन्तःकरण से स्फुटित अपनी सुन्दर रचना से उस आभा की इस तरह उपासना करते हैं जैसे चकोर चन्द्रमा की उपासना करता है ॥७॥

तद्वेदान्त शिरस्तदोङ्कृति मुखं ज्योतिः[९] कला लोचनम्
तत्तद्वेद भुजं तदात्महृदयं तद्गद्य पद्याङ्घ्रि च ।
यस्त्वद्वर्ष्म विभावयत्यविरतं वाग्देवि[१०] ! तत्वाङ्मयम्
शब्द ब्रह्मणि निष्णतः स परम ब्रह्मैकता मश्नुते ॥८॥

शब्दब्रह्म में रहते हुए परमेश्वर में व्याप्त है, जिसका वेदान्त शिर, ओङ्कार मुख, कलाएँ आँखें, वेद भुजाएँ, तथा गद्य पद्य वाङ्मय रूप चरण हैं, जो आपके शरीर की शोभा बढ़ाते हैं ॥८॥

वाग्बीजं स्मरबीज वेष्टिततमो ज्योतिः कला तद्वहि-
रष्ट[११] द्वादश षोड़श द्विगुणित तान्यब्जपत्रान्वितम्[१२] ।
तद्बीजाक्षर कादिवर्णरचितान्यग्रेदलस्यान्तरे-
हंसः कूटयुतं भवेदवितथं यन्त्रं तु सास्वतम् ॥९॥

---

(७) पा० १-२ गणां, (८) पा० १-२ स्फुट, (९) पा० १-२ तत्तत्, (१०) पा० १-२ वते, (११) पा० १-२ श्राष्ट, (१२) पा० १-२ द्वयष्टा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट दल, द्वादश दल, और षोड़श दलवाले कमल पत्र पर वाग्बीज और स्मरबीज मन्त्र को लिखकर काले रंग से घेर दें उसके बाहर किरणयुक्त सूर्य लिखें अब कमल के दूसरे दल पर सरस्वती का बीजाक्षर और ककारादि वर्ण लिखें अब सूर्य जिस दल पर लिखा हो उसको अन्य दलों से अच्छी तरह ढँक दे यह सारस्वत यन्त्र हुआ ॥९॥

ओमैंश्रीमनु सौं ततोऽपि च पुनः क्लीं वदौ वाग्वादि-
न्येतस्मादपि ह्रीं ततोऽपि च सरस्वत्यै नमोऽदः पदम् ।
अश्रान्तं निजभक्तिशक्तिवशतो यो ध्यायति प्रस्फुटम्-
बुद्धिज्ञानविचारसार सहितः स्याद् देव्यसौ साम्प्रतम् ॥१०॥

"ॐ ऐं श्रीं सौं क्लीं वद-वद वाग्वादिनि ह्रीं सरस्वत्यै नमः" उत्साह तथा भक्तिपूर्वक इस मन्त्र को जो विधि विधान से ध्यान करता है देवी सम्यक् विचार, बुद्धि एवं ज्ञान के साथ उसको दर्शन देती हैं ॥१०॥

(स्रग्धरा)

स्मृत्वा यन्त्रं[१३] सहस्रच्छदकमलमनुध्याय नाभी हृदोत्थं-
श्वेतस्निग्धोर्ध्वनालं हृदि च विकचतां चाप्य[१४] निर्यातमास्यात् ।
तन्मध्ये चोर्ध्वरूपामभयदवरदां पुस्तकाम्भोजपाणिं-
वाग्देवीं त्वन्मुखाच्च स्वमुखमनुगतां चिन्तयेदक्षरालीम् ॥११॥

मन्त्र को स्मरण करके नाभि के मध्य से स्निग्ध श्वेत पंखुरी वाले कमल, जो हृदय के पास आकर खिल गया हो तथा उसके ऊपर अभय वरदान-पुस्तक तथा कमल हाथ में धारण की हुई सम्मुख स्थित वाग्देवी के मुख से निकले हुए वर्णों की पङ्क्ति का ध्यान करें ।

(मालिनी)

किमिह बहुविकल्पैर्जल्पितैर्यस्य कण्ठे
लुठति[१५] विमलवृत्तस्थूल मुक्तावलीयम् ।
भवति भवति भाषे भव्य भाषा विशेषै-
र्मधुरमधु समृद्धस्तस्य वाचां विलासः ॥१२॥

ऐसे सारस्वत के विशेष कहने से क्या लाभ जिनके कण्ठ प्रदेश में ही मोती के हार के समान उत्तम पद्य हो जाते हैं तथा मधु की मधुरता के समान भाषा में मधुरता, भव्यता तथा समृद्धि होती हैं ।

---

(१३) पा० १-२ म, (१४) पा० १-२ प्रा, (१५) पा० १-२ भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारदा-स्तोत्रम् (सिद्धसारस्वतस्तव)

(द्रुतविलम्बित)

कलमरालविहङ्गमवाहना
सितदुकूलविभूषणलेपना ।
प्रणतभूमिरुहामृतसारिणी
प्रवरदेहविभाभरधारिणी ॥१॥
अमृतपूर्ण कमण्डलु हा[1](धा)रिणी ।
त्रिदशदानवमानवसेविता
भगवती परमैव सरस्वती
मम पुनातु सदा नयनाम्बुजम् ॥२॥

पक्षियों में श्रेष्ठ हंस के वाहनवाली, जो श्वेत रेशमीवस्त्र, आभूषण, तथा चन्दनादि द्रव्यों से विभूषित है, फल से झुके हुए वृक्षों के समान विनम्र लोगों के लिए अमृत के झरना के समान है; उत्तम शरीर कान्ति समूह को धारण करने वाली एवं अमृत-कमण्डल को धारण करने वाली तथा देव-दानव-मानवों द्वारा सेवित देवियों में श्रेष्ठ सरस्वती भगवती मेरे नयनरूप कमल को पवित्र करें (अर्थात्-मुझे दर्शन देकर तृप्त करें) ॥१२॥

जिनपतिप्रथिताखिलवाङ्मयी-
गणधराननं-मण्डप-नर्तकी
गुरुमुखाम्बुज-खेलन-हंसिका
विजयते जगति श्रुतदेवता ॥३॥

जिनेश्वर द्वारा प्रकाशित समस्त वाणी को लेकर गणधरों के मुखरूप मण्डप में नर्तकीरूप, तथा गुरु के मुखकमल में हंसिनी के समान क्रीडा करनेवाली सरस्वती जगत् में विजयी होती है ।

अमृतदीधिति-बिम्ब-समाननां-
त्रिजगती[2]जननिर्मितमाननाम् ।
नवरसामृतवीचि-सरस्वतीं-
प्रमुदितः प्रणमामि सरस्वतीम् ॥४॥

चन्द्रबिम्ब के समान मुखवाली, तीनों लोकों के लोगों के चित्त को विकसित करनेवाली, अर्थात् तीनों लोकों में ज्ञान का प्रतिरूप, नवरस रूप अमृत की नदी की लहरों से युक्त सरस्वती देवी को हर्षपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥४॥

वितत केतकपत्र विलोचने !
विहित-संसृति-दुष्कृत-मोचने ! ।
धवलपक्ष-विहङ्गम-लाञ्छिते !
जय सरस्वति ! पूरितवाञ्छिते ! ॥५॥

केवला के पत्र के समान विकसित नेत्रवाली, संसार के दुष्कृत्यों से मुक्त करानेवाली, श्वेत पंखवाले हंस पक्षी से चिह्नित, भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाली सरस्वती ! आपकी जय हो ! ॥५॥

(१) धा, (२) ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवदनुग्रह लेश तरङ्गिता-
स्तदुचितं प्रवदन्ति विपश्चितः ।
नृपसभासु यतः कमलाबला-
कुचकलाललनानि वितन्वते ॥६॥

आपकी लेशमात्र कृपा से ही विद्वान् राजसभा में काव्य पाठ करते हैं, जिससे कामिनी के स्तनों की तरह उनकी लक्ष्मी की क्रीड़ा बढ़ती जाती हैं अर्थात् काव्यपाठ द्वारा विपुल धन की प्राप्ति होती हैं ॥६॥

गतधना अपि हि त्वदनुग्रहात्
कलित कोमलवाक्य सुधोर्मयः ।
चकित बाल कुरङ्गविलोचना-
जनमनांसि हरन्तितरां नरः[३] ॥७॥

निर्धन होते हुए भी विद्वान् आपकी कृपा से बालमृग की आँखों के समान अपनी कोमल अमृतमयीवाणी से लोगों का मन हर लेते हैं ॥७॥

करसरोरुह खेलन चञ्चला
तव विभाति वरा जपमालिका ।
श्रुतपयोनिधिमध्यविकस्वरो-
ज्ज्वलतरङ्गकलाग्रहसाग्रहा ॥८॥

आपके हाथरूप कमल में क्रीड़ा करने में चपल, शास्त्ररूप समुद्र के निर्मल तरङ्ग को ग्रहण करने का आग्रह रखनेवाली जपमाला आपके करकमल में शोभती है ॥८॥

द्विरदकेसरिमारि भुजङ्गमा-
सहन तस्कर-राज-रुजां भयम् ।
तव गुणावलि-गान-तरङ्गिणां-
न भविनां भवति श्रुतदेवते ! ॥९॥

आपके गुण-गान करनेवाले शास्त्रज्ञों को हाथी-सिंह-महामारी-साँप-चोर शत्रु-राजा तथा रोग का भय नहीं होता हैं ॥९॥

(स्रग्धरा)

ॐ ह्रीं क्लीं ब्लीं[४] ततः श्रीं तदनु हसकल[५] ह्रीमथो एँ नमोऽन्ते
लक्षं साक्षाज्जपेद् यः करसमविधिना सत्तपा ब्रह्मचारी ।
निर्यान्तीं चन्द्रबिम्बात् कलयति मनसा त्वां जगच्चन्द्रिकाभां-
सोऽत्यर्थं वह्निकुण्डे विहितघृतहुतिः स्याद्दशांशेन विद्वान् ॥१०॥

जो ब्रह्मचारी कर समविधि से "ॐ ह्रीं क्लीं ब्लीं श्रीं ह-स-क-ल ह्रीं ऐँ नमः" आपके चन्द्रमण्डल से निकलते हुए स्वरूप को स्मरण करते हुए इस मन्त्र का जो कोई एक लाख जप करता है तथा उसका दशांश संख्यक घी की आहुति से हवन करता है वह विद्वान् होता है ॥१०॥★

(३) रः, (४) ब्लूँ, (५) ट् स् क् ल् । ★ किसी मन्त्र का प्रयोग मन्त्रवेत्ता के परामर्श के अनुसार ही करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(शार्दूलविक्रीड़ितम्)

रे-रे लक्षण-काव्य-नाटक-कथा-चम्पू समालोकने-
क्वायासं वितनोषि बालिश ! मुधा किं नम्रवक्त्राम्बु(जः?ज!)
भक्त्याऽऽराधय मन्त्रराज महसा[६]ऽनेनानिशं भारती
येन त्वं कविता वितान सविताऽद्वैत प्रबुद्धायसे ॥११॥

अरे, कमल के समान झुके हुए मुखवाले अज्ञानी ! तुम लक्षण-काव्य-नाटक-कथा-चम्पू आदि को देखने में क्यों परिश्रम करते हो ? तुम भक्तिपूर्वक मन्त्रराज रूप सरस्वती की प्रतिदिन उपासना करो, जिससे बुद्धिवाले हो जाओगे तथा तुम्हारी कविता चारों दिशाओं में सूर्य के समान यश फैलायेगी ॥११॥

चञ्चच्चन्द्रमुखी प्रसिद्धमहिमा स्वाच्छन्द्यराज्यप्रदा
नायासेन सुरासुरेश्वरगणै रभ्यर्चिता भक्तितः ।
देवी संस्तुतवैभवा मलयजालेपाङ्गरङ्गद्युतिः
सा मां पातु सरस्वती भगवती त्रैलोक्यसंजीवनी ॥१२॥

झिलमिलाते चन्द्र के समान मुखवाली, प्रसिद्ध महिमावाली, प्रयास विना स्वच्छन्दतारूप राज्य को देनेवाली, देवदानवों के द्वारा भक्तिपूर्वक पूजित, श्रीखण्ड चन्दन के लेप से वैसे ही रङ्ग की प्रभावाली, तीनों लोक की सञ्जीवनी समान सरस्वती मेरी रक्षा करें ॥१२॥

(द्रुतविलम्बित)

स्तवनमेतदनेक गुणान्वितं
पठति यो भविकः प्रमनाः प्रगे ।
स सहसा मधुरैर्वचनामृतै-
र्नृपगणानपि रञ्जयति स्फुटम् ॥१३॥

प्रसन्न चित्त से जो कोई प्रातःकाल इस अनेक गुणों वाले स्तोत्र का पाठ करता है वह मधुर वचन रूप अमृत से राजाओं को प्रसन्न करता है (फलस्वरूप लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।) ॥१३॥

---

(६) सहितां दिव्यप्रभां ।

+ यह हिस्सा सुप्रसिद्ध सरस्वतीस्तुतिमुक्तक 'या कुन्देन्दु' के अंतिम चरण में दृष्टिगोचर होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधारण जिनस्तवनम्

(मन्द्राकान्ता)

शान्तो वेषः शमसुखफलाः श्रोतृगम्या गिरस्ते
कान्तं रूपं व्यसनिषु दया साधुषु प्रेम शुभ्रम् ।
इत्थम्भूते हितकृतपतेस्त्वय्यसङ्गा विबोधे
प्रेमस्थाने किमिति कृपणा द्वेषमुत्पादयन्ति ॥१॥

हे कल्याणकारी जिन ! आपका वेष सौम्य है; आपकी वाणी अनायास बोधगम्या एवं मोक्षरूप फल देने वाली है; आप दुःखीजनों पर दया एवं साधुओं पर प्रेम करते हैं; आपका रूप मनोहर है; इतना होने पर भी मिथ्याज्ञानी कृपण लोग आपसे प्रेम करने के बजाय द्वेष क्यों करते हैं ? ॥१॥

(हरिणी)

अतिशयवती सर्वा चेष्टा वचो हृदयङ्गमं
शमसुखफलः प्राप्तौ धर्मः स्फुटः शुभसंश्रयः ।
मनसि करुणा स्फीता रूपं परं नयनामृतम्
किमिति सुमते ! त्वय्यन्यः स्यात्प्रसादकरं सताम् ॥२॥

आपकी सभी चेष्टाएँ अतिशययुक्त हैं । आपकी वाणी हृदय को स्पर्श करने वाली है, पवित्र आश्रय पाने से धर्म स्फुटित होकर कल्याणरूप फल प्राप्त किया । आपका मन दया से भरा है, नयन को अमृत समान सुख देने वाला रूप है; हे सुमति ! आपके सिवा सज्जनों पर दया करने वाला कौन है ?

(वंशस्थ)

निरस्तदोषेऽपि तरीव वत्सले
कृपात्मनि त्रातरि सौम्यदर्शने ।
हितोन्मुखे त्वय्यपि ये पराङ्मुखाः
पराङ्मुखास्ते ननु सर्वसम्पदाम् ॥३॥

आप दयालु, जिस तरह गाय सदैव अपने बछड़े पर स्नेह रखती है, उसी तरह आप सब की रक्षा करनेवाले तथा भवसागर को पार करने के लिए नाव के समान हैं; सभी दोषों को दूर करने पर भी अगर कोई आपसे विमुख होता है तो वह सभी सम्पदाओं से विमुख हो जाता है ॥३॥

सर्वसत्त्वहितकारिणि नाथे न प्रसीदति मनस्त्वयि यस्य ।
मानुषाकृतितिरस्कृतमूर्तेरन्तरं किमिह तस्य पशोर्वा ? ॥४॥

हे नाथ ! आप सभी जीवों का कल्याण करनेवाले हैं; आप में जिसका मन नहीं लगता है उस तिरस्कृत मनुष्य तथा पशु में क्या अन्तर है ? ॥४॥

त्वयि कारुणिके न यस्य भक्तिर्जगदभ्युद्धरणोद्यतस्वभावे ।
नहि तेन समोऽधमः पृथिव्यामथवा नाथ ! न भाजनं गुणानाम् ॥५॥

हे नाथ ! आप जगत् के जीवों के उद्धार के लिए उद्यत रहते हैं; फिर भी अगर आप जैसे दयालु में जिसकी भक्ति नहीं हो तो उसके समान पृथ्वी पर कोई दूसरा अधम नहीं है (या वह गुण का पात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है ।) ॥५॥

एवंविधे शास्तरि वीतदोषे महाकृपालौ परमार्थवैद्ये ।
मध्यस्थभावोऽपि हि शोच्य एव प्रद्वेषदग्धेषु क एष वादः? ॥६॥

आप सफल शासक, सर्वदोष मुक्त, दयावान्, मोक्षवेत्ता, रागद्वेष आदि को जलानेवाले हैं; यह तो मध्यस्थभावी भी स्वीकारते हैं । इसमें विवाद कैसा ?

न तानि चक्षूंषि न यैर्निरीक्ष्यसे न तानि चेतांसि न यैर्विचिन्त्यसे ।
न ता गिरो या न वदन्ति ते गुणान्न ते गुणा ये न भवन्तमाश्रिताः ॥७॥

वह आँख, आँख नहीं जो तुम को नहीं देखे; वह हृदय, हृदय नहीं जो तुम्हारा चिन्तन न करे; वह वाणी, वाणी नहीं जो तुम्हारा गुणगान न करे तथा वह गुण, गुण नहीं है जो तुम्हारे आश्रित नहीं हो ॥७॥

तच्चक्षुर्दृश्यसे येन तन्मनो येन चिन्त्यसे ।
सज्जनानन्दजननी सा वाणी स्तूयसे यया ॥८॥

वस्तुतः आँख वही है जिसके द्वारा 'तुम' देखे जाते हो; मन वही है जिसमें तुम्हारी चिन्ता होती है; सज्जनों के आनन्द का कारण वही वाणी है जिससे तुम्हारी स्तुति की जाती है ॥८॥

(द्रुतविलम्बित)

न तव यान्ति जिनेन्द्र ! गुणा मितिम्
मम तु शक्तिरुपैति परिक्षयम् ।
निगदितैर्बहुभिः किमिहापरै-
रपरिमाणगुणोऽसि नमोऽस्तु ते ॥९॥

हे जिनेन्द्र ! तुम्हारे गुणों का अन्त नहीं हैं; बहुत कहने से तो मेरी शक्ति ही क्षीण होती है; तुझमें अपरिमित गुण है, तुम्हें नमस्कार हो ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीनेमिजिनस्तुतिः

(स्त्रग्धरा)

राज्यं राजीमतीं च त्रिदशशशिमुखी गर्व सर्वं कषां यः,
प्रेमस्थामाऽभिरामां शिवपदरसिकः शैवक श्रीवुवूर्षुः ।
त्यक्त्वाच्चो(चो)द्दामधामा सजलजलधरश्यामलस्निग्धकाय
च्छायः पायादपाया दुरुदुरितवनच्छेदनेमिः सुनेमिः ॥१॥

सुर-सुन्दरियों से भी अधिक सुन्दर तथा प्रगाढ़ प्रेमयुता मनोहर राजीमती को छोड़कर शिवलक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छावाले, राज्य को छोड़कर मोक्ष साम्राज्य के अभिलाषी, जल से भरे मेघ समान श्याम और चमकीले शरीर की कान्तिवाले, जघन्य पाप रूप विकट वन को काटने में चक्र के समान सिद्ध हुए श्री नेमिजिन आपकी रक्षा करें ॥१॥

दातारो मुक्तिलक्ष्मी मद-मदनमुख-द्वेषिणः सूदितार-
स्त्रातारः पापपङ्कात्त्रिभुवनजनतां स्वश्रियं भासितारः ।
स्त्रष्टारः सद्विधीनां निरुपम-परम-ज्योतिषां वेदितारः,
शास्तारः शस्तलोकान्सुगति-पथ-रथं पान्तु वः तीर्थनाथाः ॥२॥

मोक्ष रूप सम्पत्ति को देने वाले, काम-मद-द्वेष को नाश करनेवाले, तीनों लोकों को पाप के पङ्क से रक्षा करनेवाले, तीनों भुवनों को अपनी विभूति से आलोकित करनेवाले, सन्मार्ग की रचना करनेवाले, परम के ज्ञाता, कल्याण चाहने वालों को मोक्ष का मार्ग बताने वाले तीर्थंकरों रक्षा करें ॥२॥

पीयूषौपम्य रम्यां शुचि पद पदवीं यस्य माधुर्य धुर्यां,
पायं-पायं व्यपायं भुवि विबुधजनाः श्रोत्रपात्रैः पवित्रैः ।
जायन्ते जाड्यमुक्ता विगतमृतिरुजः शाश्वतानन्दमग्नाः,
सोऽयं श्रीधामकामं जयति जिनवचः क्षीरनीराब्धिनाथः ॥३॥

जिनवचन रूप क्षीरसमुद्र सर्वश्रेष्ठ है, जिनके अमृत के समान रम्य और माधुर्य से श्रेष्ठ पवित्र पदों को अपने कानों से सही ढंग से बार-बार सुनकर विबुध लोग जड़ता, मृत्यु, और रोग से मुक्त होकर शाश्वत आनन्द में मग्न होते हैं ॥३॥

या पूर्वं विप्रपत्नी सुविहित विहित प्रौढ दान प्रभाव-
प्रोन्मीलन्पुण्य पूरैरमर महिमा शिश्रिये स्वर्गद्वारम् ।
सा श्रीमन्नेमिनाथ प्रभुपदकमलोत्सङ्ग शृङ्गार भृङ्गी,
विश्वाऽम्बा वः श्रियेऽम्बा विपदुदधिपतद्दत्तहस्तावलम्बा ॥४॥

जो पूर्वभव में ब्राह्मण की पत्नी थी तथा सुपात्रदान के प्रभाव से, पुण्य का उदय होने पर, स्वर्ग में आश्रय लेकर, श्री नेमिनाथ के चरणकमल को अपनी गोद में रखकर उसके श्रृंगार पर भंवरी के समान, विपत्तिरूप समुद्र में गिर रहे लोगों को अपने हाथों के सहारे रोकने वाली जगदम्बा अम्बा भगवती आप का कल्याण करें ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'प्रबन्धचतुष्टय' अंतर्गता श्रीजिनस्तुतिः

(अनुष्टुभ्)

नम्राखण्डल-सन्मौलि-श्रस्त-मंदार-दामभिः ।
यस्यार्चितं क्रमाम्भोजं भ्राजिते(तं) तं जिनं स्तुवे ॥१॥

इन्द्र ने अपने श्रेष्ठ नमित मुकुट से, मंदारपुष्प की माला से जिनके चरणकमल की पूजा की है, मैं उन्हीं जिन के सुशोभित चरणकमल की स्तुति करता हूँ ॥१॥

यथोपहास्यतां याति तितीर्षुः सरितां पतिम् ।
दोर्भ्यामहं तथा जिष्णो जिनानन्त-गुण-स्तुतौ ॥२॥

जिस प्रकार बँधे हुए दोनों हाथों से सागर को तैरकर पार करने की इच्छा रखनेवाला उपहास का पात्र होता है, उसी प्रकार सागर रूप जिनेश्वर भगवान् के अनन्तगुण की स्तुति में मैं उपहास्य बनूँगा ।

तथाऽपि भक्तितः किञ्चिद्वक्ष्येऽहं गुणकीर्तनम् ।
महात्मनां गुणांशोऽपि दुःख-विद्रावणक्षमः ॥३॥

फिर भी, मैं उनके गुण के विषय में भक्तिपूर्वक कुछ कहूँगा, क्योंकि महात्माओं के गुण का अंश मात्र कीर्तन भी दुःख को नाश करने में सक्षम है ॥३॥

नमस्तुभ्यं जिनेशाय मोहराज-बलच्छिदे ।
निःशेष जंतु संतान-संशयच्छेदि संविदे ॥४॥

मोहराज की शक्ति को नष्ट करनेवाले तथा समस्त जीवों के संशय को दूर करनेवाले ज्ञानी-जिनेश्वर को नमस्कार हो ॥४॥

नमस्तुभ्यं भवांभोधि निमज्जज्जन्तु तारिणे ।
दुर्गापवर्ग सन्मार्ग स्वर्ग-संसर्ग-कारिणे ॥५॥

भवरूप समुद्र में डूबते हुए जीवों के तारनेवाले, कठिन मोक्ष के मार्ग बताने वाले, और स्वर्ग से सम्पर्क कराने वाले जिनेश्वर को नमस्कार हो ॥५॥

नमस्तुभ्यं मनोमल्ल-ध्वंसकाय महीयसे ।
द्वेषद्विप-महाकुम्भ-विपाटन-पटीयसे ॥६॥

आप मनको जीतकर द्वेष रूप गजेन्द्र के कुम्भस्थल को उखाड़कर फेंकने में पटु हैं । अतः आपको नमस्कार है । (मानो विजय के बाद मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रसन्न रहता है ।) ॥६॥

धन्यास्ते यैर्जिनाधीश ददृशे त्वत्मुखाम्बुजम् ।
मोक्षमार्गं दिशत्साक्षात् द्रव्यानां स्फारदृष्टिभिः ॥७॥

भव्य जीवों को मोक्षमार्ग की देशना देते समय आपके मुखकमल के दर्शन जिन्होंने विकसित आँखों से कर लिये वे धन्य हैं (जो लोग जिनेश्वर के मोक्षमार्ग को अर्थात् आगम को अपनी परिणत चिन्तनशक्ति से समझ रहे हैं वे धन्य हैं ।) ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न मया माया-विनिर्मुक्तः शंके दृष्टः पुरा भवान् ।
विनाऽऽपदां पदं जातो भूयो भूयो भवार्णवे ॥८॥

सांसारिक सुखों में लीन होने से आप की वाणी में शंका की; जिस कारण बार-बार संसार-समुद्र में जाना होता है ।

दृष्टोऽथवा तथा भक्तिर्नो वा जाता कदाचन ।
तवोपरि ममात्यर्थं दुर्भाग्यस्य दुरात्मनः ॥९॥

यह मेरा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि मैंने न कभी (आप का) दर्शन किया, न ही हृदय से आप की भक्ति की ।

साम्प्रतं दैवयोगान्मे त्वया सार्द्धं गुणावहः ।
योगोऽजनि जनानंत-दुर्लभो भवसागरे ॥१०॥

अभी सद्भाग्य से भवसागर में दुर्लभ मोक्ष मार्ग के बारे में आप की संगति (वाणी) से जानकारी मिली, (अर्थात् आगम के सार को समझा ।) ॥१०॥

दयां कुरु तथा नाथ भवानि न भवे यथा ।
नोपेक्षन्ते क्षमा क्षीणं यतो मोक्षश्रयाश्रितम् ॥११॥

हे नाथ ! जिस प्रकार क्षमा दुर्बलों की भी उपेक्षा नहीं करती, मोक्ष भी आश्रितों को आश्रय देने में उपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार आप ऐसी करुणा करें जिससे मैं पुनः इस संसार में नहीं होऊँ ॥११॥

निर्बन्धुर्भ्रष्टभाग्योऽयं निःसरन् योगतः प्रभुः ।
त्वां विनेति प्रभो प्रीत प्रसीद प्राणिवत्सलः ! ॥१२॥

योग से फिसलते हुए दण्ड के योग्य यह भाग्य बन्धुहीन होकर भ्रष्ट हो गया है; सभी जीवों के प्रति दया रखने वाले हे प्रभो ! तुम्हारे सिवा, सभी प्राणियों को बच्चे के समान देखनेवाला, कौन है ? तुम प्रसन्न होओ ॥१२॥

तावदेव निमज्जन्ति जन्तवोऽस्मिन् भुवाम्बुधौ ।
यावत्त्वदंह्रितकासि(न) श्रयंति जिनोत्तम ॥१३॥

जीव तभी तक संसारसागर में डूबता है जब तक आपके चरण का आधार उसे नहीं मिलता ॥१३॥

एकोऽपि यैर्नमस्कारश्चक्रे नाथ तवांजसा
संसार पारावारस्य तेऽपि पारं परं गताः ॥१४॥

हे नाथ ! सहसा भी जिन्होंने एक बार तुम्हारे नमस्कार मन्त्र को पढ़ लिया है, उसने भी संसाररूप समुद्र को पार कर लिया ।

इत्येवं श्रीक्रमालीढं जन्तुत्राणपरायण ।
देहि मह्यं शिवे वासं देहि सूरिनतक्रम ॥१५॥

विद्वान् भी जिनके चरण में नत हैं ऐसे सभी ऐश्वर्यों से युक्त, तथा सभी जीवों का रक्षण करने में सक्षम करनेवाले ऐसे जिनेश्वर मुझे मोक्ष में वास दें ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भग्रन्थ सूची :

१. ''वादी-कवि बप्पभट्टिसूरि,'' **निर्ग्रन्थ** - प्रवेशांक, सं॰ मधुसूदन ढांकी : जितेन्द्र शाह, अहमदाबाद १९९६, गुजराती विभाग, पृष्ठ १२-१५.

२. (अ) **श्री भैरवपद्मावती कल्प** अंतर्गत, (द्वितीय संस्करण), सं॰ साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद १९९६, पृ॰ १५९-१६०.

(आ) **सिद्धसरस्वतीसिंधु** अंतर्गत, सं॰ चन्द्रोदयसूरि, सूरत १९९४, पृ॰ १७.

(ई) ला॰ द॰ भे॰ सू॰ २४६७५ (L. D. Institute of Indology Ahmedabad.)

३. **श्री बप्पभट्टिसूरि विरचित-चतुर्विंशतिका,** सं॰ श्री हीरालाल रसिकदास कापड़िया, श्री आगमोदय समिति मुंबई, प्रथम संस्करण, मुंबई १९२६, पृष्ठ १८१-१८५. (**'सिद्धसारस्वतस्तोत्र'** का ही दूसरा नाम 'शारदास्तोत्र' है ।)

४. **जैनस्तोत्र सन्दोह** - प्रथम भाग, सं॰ चतुरविजयमुनि, प्राचीन (जैन) साहित्योद्धार ग्रन्थावल्याः प्रथम पुष्प, अहमदाबाद १९३२, पृ॰ २९-३०.

५. **स्तुतितरङ्गिणी**-भाग-२, सं॰ श्रीमद् विजयभद्रङ्करसूरि, श्रीभुवनतिलक सूरीश्वर ग्रन्थमाला-५०, मद्रास वि॰ सं॰ २०४३ / ई॰ स॰ १९८७, पृ॰ २७७.

६. **'बप्पभट्टी कथानक,' अज्ञात कर्तृक प्रबन्ध-चतुष्टय,** सं॰ रमणीक म॰ शाह, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षण निधि, अहमदाबाद १९९४, पृ॰ ६७-६८.

★ टिप्पण ३ अंतर्गत निर्देशित ग्रन्थ.

७. **काव्यप्रकाश** (प्रथम उल्लासः, द्वितीया कारिका), वाराणसी वि॰ सं॰-२०४२ / ई॰ स॰ १९८६ पृ॰-१०.

८. **काव्यप्रकाश** - ४/२७-२८.

९. **साहित्यदर्पण** ३/१.

१०. **दशरूपक**-४/३५-३६ (पृष्ठ ९२-९३), निर्णयसागर प्रेस, ५वाँ संस्करण, बम्बई १९४१.

११. **प्रबन्धचतुष्टय** अंतर्गता 'जिनस्तुति' - श्लोक-६.

१२. वहीं-श्लोक-७.

१३. वहीं श्लोक-५.

१४. **चन्द्रालोक,** चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस १९४५ ई॰ **पंचमे मयूखे ६८ पृष्ठ १४९.**

१५. वहीं - ५-६१ पृष्ठ १३९.

१६. वहीं - ५-७८ पृष्ठ १५८.

१७. वहीं - ५-७७ पृष्ठ १५७.

१८. **काव्यप्रकाश,** प्रथम उल्लास, कारिका ३, पृष्ठ १९, (तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि).

१९. **रसगङ्गाधरः** - पुनः मुद्रण - दिल्ली, १९८३, पृष्ठ ४, (प्रथमानने प्रथमा कारिका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org